Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 9.134
Volume - 9, Issue - 6, June - 2026

DOIs:10.2018/SS/202606017 --:-- Research Paper / Article / Review

संत काव्य परंपरा और स्त्री लेखन

ललिता गुप्ता
पी-एच. डी. (शोधार्थी) हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय ,अलमोड़ा
Email - dr.lalitagupta14@gmail.com

सारांश : हिंदी की संत-काव्य परंपरा को प्रायः कबीर से आरंभ मानकर दादू, रैदास, नानक, धर्मदास आदि पुरुष संतों तक सीमित कर दिया जाता है। इस विवेचन में एक महत्वपूर्ण पक्ष सदैव उपेक्षित रह जाता है महिला संत कवयित्रियों का योगदान। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी उपेक्षित पक्ष को केंद्र में रखकर बावरी साहिबा, सहजो बाई और दया बाई जैसी संत कवयित्रियों की काव्य-साधना का अध्ययन प्रस्तुत करता है और यह दर्शाता है कि गुरु-महिमा, निर्गुण-सगुण समन्वय, वैराग्य, सत्संग और सामाजिक रूढ़ि-खंडन जैसे

बीजशब्द : संत काव्य, स्त्री लेखन, बावरी साहिबा, सहजो बाई, दया बाई, निर्गुण भक्ति, गुरु-परंपरा, वैराग्य, सत्संग, स्त्री-विमर्श, मध्यकालीन हिंदी साहित्य।

1. भूमिका : संत काव्य परंपरा का शिलान्यास सामान्यतः तेरहवीं शताब्दी के मध्य से माना जाता रहा है। कुछ विद्वान इसका प्रारंभ तेरहवीं सदी के अंत से भी मानते हैं, पर उनमें वे भी हैं जो महिला संत कवयित्रियों को इंगित करना ही भूल गए हैं। "संत" शब्द लोक-प्रचलित शब्द है, जिसका अर्थ है पवित्र, ज्ञानी, शांत, समतामूलक समाज का संस्थापक, धर्म-आडंबरों को खंडित करने वाला। हिंदी में संत काव्य परंपरा का प्रारंभ कबीर से माना जाता रहा है, यद्यपि कुछ विद्वान कालक्रमानुसार रैदास (रविदास) को प्रथम मानते हैं। इसके पश्चात दादू, रज्जब, नानक, धर्मदास, मलूकदास, यारी साहब आदि आते हैं।

संत कवि जातिगत रूढ़ियों को तोड़ने वाले, निराकार ब्रह्म को मानने वाले तथा गुरु-परंपरा की विशेषता लिए हुए थे। इनका अपना कोई पृथक धर्म नहीं था, न ही किसी धर्म की रूढ़ि मानने को ये विवश थे। इनके लिए मानवता के हित का धर्म ही सबसे बड़ा धर्म और कर्म था। मूर्त जगत की कृत्रिमता से प्राणीमात्र को अवगत कराना ही इनका मुख्य लक्ष्य था। संत कवि "गुरु" को ही परम ब्रह्म-ज्ञान का स्रोत मानते थे; उनके लिए गुरु से बड़ा कोई नहीं था। आचार्य नगेन्द्र ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है

"संत संप्रदाय विश्व-संप्रदाय है और उसका धर्म विश्व-धर्म है, और इस धर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता। समस्त वासनाओं, इच्छाओं एवं द्वेषों से रहित विशाल धर्म का प्रवेश और समावेश संभव है। यह सब सद्गुरु की कृपा से ही संभव है। संत संप्रदाय ने गुरु को ब्रह्म से भी महान माना है।"

आचार्य नगेन्द्र के इस कथन से स्पष्ट है कि संत-परंपरा में गुरु की महत्ता सर्वोपरि थी।[1]

2.उपेक्षित पक्ष-महिला संत : इतनी विशेषताओं के विवेचन के बावजूद एक महत्वपूर्ण हिस्सा सदैव छूट जाता है, और वह है महिला संतों से दुनिया का परिचय। संतमत की व्याख्या करने वाले विद्वानों की संख्या बहुत है, पर प्रायः हर कोई महिला संत को इंगित करना भूल जाता है, या कहा जाए कि उसे आवश्यक ही नहीं समझा गया। ऐसा तो नहीं था कि उस समय महिलाएँ ही नहीं थीं, अथवा समाज की समस्याओं से अनभिज्ञ थीं। उस समय का समाज स्त्रियों के लिए कोई विचारमूलक पद्धति लेकर नहीं चल रहा था वह तो उसे कुलबोरनी, धर्मनाशक, कामिनी आदि की ही संज्ञा देता आया है। उसमें निर्गुण संतमत के कवि भी कहीं-कहीं स्त्री-विरोधी दिखाई देते हैं।

महिला संतों में बावरी साहिबा, दया बाई और सहजो बाई हैं, जिन्होंने संत-काव्य परंपरा में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। सावित्री सिन्हा ने मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ शीर्षक शोध-ग्रंथ में "उमा" और "पार्वती" को प्रथम स्थान दिया है; पढ़ने पर लगता है कि वे

[1]नगेन्द्र (सं.), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2012, पृष्ठ 115.

निर्गुण धारा की संत कवयित्रियों में से ही एक हैं, क्योंकि इनके काव्य में राम-कृष्ण के स्थान पर "सद्गुरु" की महिमा का बखान है जो निर्गुण संत कवियों का मुख्य परिचायक बिंदु है।[2]

इन दोनों के अतिरिक्त मुक्ताबाई का नाम भी लिया जाता है, जो मिश्रबंधु विनोद में देखने को मिल जाता है। ये सभी संत कवयित्रियाँ हैं, जिनके विषय में छिटपुट पढ़ने को मिल जाता है, पर लिखित रूप में ये कहीं स्पष्ट दिखाई नहीं देतीं।[3]

बावरी साहिबा : (सं. 1599–1662) बावरी साहिबा अकबर की समकालीन जान पड़ती हैं। ये "मायानन्द" की शिष्या के रूप में प्रसिद्ध थीं। कहा जाता है कि ये उच्चकुल की साधिका थीं, जो जीवन के सत्य की खोज में निकली थीं। इनके जन्म-स्थान के विषय में मतभेद है। ये भी गुरु की महिमा का बखान करते हुए गुरु-शिष्य परंपरा को आगे बढ़ाती हैं और गुरु को ही परम ब्रह्म मानती हैं

अजपा जाप सकल बरतै, सो जानै सोई पेखा।
गुरुगन जोति अगम घर बासा, सो पाया सोई देखा॥
मैं बन्दी हौ परम तत्त्व की, जग जानत की भोरी।
कहत बावरी सुनो हो बीरु, सुरनत कमल पर डोरी॥

इन पंक्तियों से पता चलता है कि ये गुरु को परम सत्ता से संबोधित करते हुए स्वयं को उनकी प्रिय बता रही हैं। "बीरु" संभवतः उनके शिष्य हैं, जिनसे वे अपना ज्ञान हस्तांतरित कर रही हैं। इनकी कुछ ही रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनसे ये उच्च कोटि की कवयित्री जान पड़ती हैं; इस संबंध में इससे अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है।[4]

सहजो बाई : (सं.1740–1820) इनकी अपनी रचनाओं से ही यह पता चलता है कि ये गुरु चरणदास की शिष्या थीं और वैश्य कुल में जन्मी थीं। उल्लेख मिलता है कि ये सं. 1800 फागुन मास में पैदा हुई थीं। अपने जन्म, अपनी रचनाओं और गुरु के विषय में उन्होंने स्वयं निम्न पंक्तियों में लिख दिया है —

फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
संवत अठारह सौं हुते, सहजो किया विचार॥
गुरु-अस्तुति के करन कूँ, बाढ़यौ अधिक हुलास।
होते-होते हो गई पोथी "सहज-प्रकाश"॥

उपरोक्त पंक्तियों में स्पष्ट है कि ये गुरु का वर्णन मात्र करने चली थीं और एक ग्रंथकार कवयित्री संत में परिणत हो गईं।[5]

गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए वे कहती हैं कि गुरु रंगरेज की तरह हैं, जो मानवमात्र के वस्त्र-रूपी मन के आवरण पर अपने ज्ञान का ऐसा रंग डालता है, जो न छुड़ाए छूटता है, न उतारे उतरता है। जगत के मोहजाल से मुक्ति दिलाने वाला गुरु ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है; शेष सब इस मूर्त जगत की भाँति कृत्रिम और मृतप्राय है

सहजो गुरु रंगरेज सा, सबहीं कूँ रंग देत।
जैसा तैसा बसन है, जो कोई आवै सेत॥
चरणदास के चरण पर, सहजो वारे प्रान।
जगत व्यथा सूँ काढ़ि कर, राख्यो पद निरबान॥

गुरु को रंगरेज और शुद्ध श्वेत रंग (निर्मलता का प्रतीक) का प्रयोग सहजो बाई की काव्य-कुशलता का परिचायक है।[6]

वे सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए कहती हैं कि साधु-संतों की संगति में मनुष्य अपनी अज्ञानता का परित्याग कर ज्ञान-मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। वहाँ जाति-पाँति का कोई बंधन नहीं, न ही ऊँच-नीच की रेखा। जिस प्रकार जल अपनी अबाध गति से बहता हुआ गंगा में मिलकर स्वयं गंगाजल हो जाता है, उसी प्रकार सत्संग की संगति है

जो आवै सतसंग में, जानत बरन कुल खोय।
सहजै मिलै कुचलै जल, मिले सो गंगा होय॥

---

[2]सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ (शोध-ग्रंथ) के आधार पर; द्रष्टव्य सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, आनन्द प्रकाशन, कोलकाता, 2004.

[3]मिश्रबंधु विनोद में मुक्ताबाई का उल्लेख; द्रष्टव्य सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006.

[4]परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य धारा, किताब महल, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 153–154.

[5]वियोगी हरि, संत सुधा सार, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 690.

[6]वही, पृष्ठ 694.

जल के गंगा में मिलकर गंगा हो जाने का बिंब सत्संग की समतामूलक शक्ति को व्यंजित करता है।[7]

कबीर की ही तरह उन्होंने भी सगुण और निर्गुण के विषय में बताया है कि दोनों में कोई भेद नहीं। जो जिस मत को मानता है, उसके लिए वही उत्कृष्ट हो जाता है। जिस प्रकार कबीर कहते हैं

"गुन में निरगुन निरगुन में गुन, बाट छाँड़ि क्यूँ बहिये"[8] ठीक उसी प्रकार सहजो बाई भी अपने काव्य को निरूपित करती हैं

निराकार आकार सब, निरगुन अरू गुनवंत।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो यों भगवंत॥
निरगुन सूँ सगुन भये, भक्त-उधारनहार।
सहजो की दंडौत है, ताकू बारम्बार॥

ईश्वर निर्गुण हो या सगुण, वह सदा भक्त-वत्सल है; ऐसे प्रभु को सहजो बाई कोटि-कोटि नमन करती हैं।[9]

दया बाई : (सं. 1750–1830) ये भी चरणदास की शिष्या थीं। यह कहना गलत न होगा कि दया बाई सहजो बाई की गुरु-बहन थीं। इन्होंने भी संत कवियों की ही तरह उस परंपरा को बखूबी निभाया है। इनके ग्रंथ "दया बोध" और "विनय मालिका" उपलब्ध हैं। इन्होंने गुरु-भक्ति के अतिरिक्त प्रेम, वैराग्य आदि पर भी रचनाएँ की हैं। गुरु की वंदना से अपने काव्य का प्रारंभ करते हुए उन्होंने उनकी महिमा-मंडन का विस्तार किया है

गुरु किरपा बिन होत नहिं, भाव भक्ति विस्तार।
जोग जग्य तप "दया", केवल ब्रम्हा विचार॥
सूरा सन्मुख समय में, धायल होत निसंक।
यों साधू संसार में, जग के सहें कलंक॥

दया बाई गुरु-कृपा को ही भक्ति-विस्तार का मूल मानती हैं।[10]

अपने दोहों में वे कहती हैं कि साधु-साधु सब कहते हैं, पर साधु का असली अर्थ कोई नहीं जानता। जब सत्पुरुषों का साथ होगा, तो ब्रह्मज्ञान के गूढ़ रहस्य से पर्दा हट जाएगा। उनके दर्शन मात्र से हृदय को शीतलता, वाणी को मधुरता और मन को परम शांति का आभास होगा। इन्हीं अनुभवों को प्राप्त करने के लिए सत्संग आवश्यक है

साध साध सब कोउ कहै, दुरलभ साधू सेव।
जब संगत है साध की, तब पावै सब भेव॥
साधू बिरला जगत में, हर्ष शोक करि हीन।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन॥

साधु की दुर्लभता और सत्संग की अनिवार्यता दया बाई के चिंतन का केंद्रीय स्वर है।[11]

दया बाई ने गुरु-महिमा के साथ प्रेम और वैराग्य के भी पद लिखे हैं। उन्होंने वैराग्य को मानवमात्र के लिए हितकर बताया है। उनके अनुसार संसार माया-मोह का जंजाल है, जो प्राणीमात्र को अपने वश में कर लेता है; इस वश से निकलने का एक ही रास्ता है इस विनाशकारी मरणशील भव से पार होना, और यह वैरागी होकर गुरु की कृपा से ही संभव है। उनका कहना है कि जब जगत विनाशशील है, तो उसका मोह कैसा? राजा हो या रंक, बूढ़ा हो या जवान सब एक दिन मिट्टी में ही मिल जाएँगे

दया कुँवर या जति में, नहिं रह्यो थिर कोय।
जैसे बस सराय को, तैसे यह जग होय॥
बड़े पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
दया काल परपंच है, मारै सबकूँ घेर॥

काल के विशाल मुख का बिंब दया बाई के वैराग्य-भाव को तीव्रता प्रदान करता है।[12]

---

[7]वही, पृष्ठ 694.

[8]हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 162.

[9]वियोगी हरि, संत सुधा सार, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 700.

[10]परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य धारा, किताब महल, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 246.

[11]वियोगी हरि, संत सुधा सार, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 710.

[12]वही, पृष्ठ 709.

3.स्त्री-विमर्श की दृष्टि : कहने का तात्पर्य यही है कि पुरुष संत कवियों की ही तरह महिला संत कवयित्रियों ने भी समाज में अपनी भूमिका बखूबी निभाई है। फिर इन्हें वह स्थान क्यों नहीं दिया गया जो अन्य संतों को मिला? गुरु-परंपरा, जातिगत आडंबर का खंडन, वैराग्य, कुरीतियों का परित्याग, सांसारिक मोह से मुक्ति इन सभी बातों को इन्होंने अपनी वाणियों में स्थान दिया है। जिस प्रकार कबीर गुरु की महिमा गाते हुए कहते हैं

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँव।
बलिहारी गुरु आपनै, गोविंद दियो बताय॥

वैसे ही सहजो बाई ने भी अपने गुरु का बखान इस प्रकार किया है

परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत बेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान॥

दोनों की पंक्तियों की तुलना करें तो स्पष्ट होता है कि बात किसी की लेखनी, सत्संग या गुरु-भक्ति की नहीं बात यहाँ समाज की है, जो तब से लेकर आज तक स्त्री-विमुख ही रहा है।[13]

ऐसी ही कई अन्य महिला संत हैं, जिनका नाम आज तक नहीं लिया जाता। कुछ ऐसी भी हैं, जो भले ही सगुण धारा से हों, पर संत-धारा की ही जान पड़ती हैं, क्योंकि वे भी सांसारिक मोह-जाल से मुक्ति पाने के लिए सांसारिक कुरीति को तोड़ती हुईं वर्षों से चली आ रही पारंपरिक रूढ़ि को तोड़ने का जिम्मा लेती हैं और स्त्री-शोषण के विरुद्ध नवीनता की नींव रखती हैं।[14]

4.निष्कर्ष : जब इतिहास को पलटकर देखा जाए तो बहुत-से ऐसे साक्ष्य मिलते हैं जिनसे यह जान पड़ता है कि निर्गुण संत परंपरा का श्रीगणेश करने वाली महिला लेखिकाएँ ही थीं, न कि पुरुष। स्त्री-काव्य के आरंभिक दौर पर गौर करें तो पाएँगे कि निर्गुण काव्यधारा की पहली रचनाकार लेखिकाएँ थीं, जबकि इतिहास-ग्रंथों में यही लिखा है कि पुरुष कवियों ने निर्गुण काव्यधारा का श्रीगणेश किया। फिर वह सत्य कहीं अंकित क्यों नहीं है?

जिस समय निर्गुण संत काव्य परंपरा का दौर चल रहा था, उस समय स्त्रियों की दशा कुछ विशेष अच्छी नहीं थी, और इसका प्रमाण कई निर्गुण संतों की वाणी से भी मिलता है। इसमें परम आदरणीय संत कबीर भी हैं, जो स्त्री को हेय दृष्टि से देखते हैं। उदाहरण-स्वरूप "नारी से नागिन भली, डसै और मरि जाय।" ऐसी पंक्तियों को पढ़कर लगता है कि समाज की ही तरह ये संत भी स्त्री-विरोधी थे; और ऐसे समाज से समानता की आशा कैसे की जा सकती है।[15]

अंततः यह कहा जा सकता है कि संत काव्य परंपरा का अध्ययन तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक उसमें बावरी साहिबा, सहजो बाई और दया बाई जैसी कवयित्रियों को समुचित स्थान नहीं मिलता। इन्होंने न केवल संत-काव्य के समस्त मूल्यों का निर्वाह किया, बल्कि स्त्री होकर उस सामाजिक रूढ़ि को भी चुनौती दी जो स्त्री को साधना और सृजन से वंचित रखती थी। इनकी वाणियों का पुनर्पाठ हिंदी साहित्य के इतिहास को अधिक समावेशी, न्यायपूर्ण और संपूर्ण बनाने की दिशा में एक आवश्यक कदम है।

संदर्भ ग्रंथ

1. वियोगी हरि. (2004). संत सुधा सार. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल।
2. चतुर्वेदी, परशुराम. (2008). संत काव्य धारा. इलाहाबाद: किताब महल।
3. सिंह, सुधा. (2004). मध्यकालीन साहित्य विमर्श. कोलकाता: आनन्द प्रकाशन।
4. बड़थ्वाल, पीताम्बर. (1995), हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, नई दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन।
5. नगेन्द्र. (2012). हिन्दी साहित्य का इतिहास. नोएडा: मयूर पेपरबैक्स।
6. भारती, के. एम. (2010). स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
7. राजे, सुमन. (2006). हिंदी साहित्य का आधा इतिहास. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।
8. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2012). कबीर. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

[13]वही, पृष्ठ 692.

[14]के. एम. भारती, स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010.

[15]हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 162; तथा पीताम्बर बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.